निश्चयनयाश्रयणे तु पुनरपर्याप्त:१ (औदारिकाद्या: शुध्दास्तत्पर्याप्तकस्य, मिश्रास्त्वपर्याप्तकस्येति। तत्रोत्पत्तावौदारिककाय: कार्मणेन, औदारिकशरीरिणश्च वैक्रियिकाहारककरणकाले वैक्रियिकाहारकाभ्यां मिश्रो भवतीति । एवमौदारिकमिश्र: । तथा वैक्रियिकमिश्रो देवाद्युत्पत्तौ कार्मणेन, कृतवैक्रियस्य वौदारिकप्रवेशाध्दायामौदारिकेण । आहारकमिश्रस्तु साधिताहारककायप्रयोजन: पुनरौदारिकप्रवेशे औदारिकेणेति । स्था. ३ का. १३. (अभि. रा. को. जोग.))। एवं समुध्दातगतकेवलिनामपि वक्तव्यम् ।

मनुष्यविशेषस्य निरुपणार्थमाह --

एवं मणुस्स-पज्जत्ता ।। ९१ ।।

पर्याप्तेषु नापर्याप्तत्वमस्ति, विरोधात्। तत: 'एवं पज्जत्ता' इति कथमेतध्दटत इति ? नैष दोष:, शरीरानिष्पत्त्यपेक्षया तदुपपत्ते:। कथं तस्य पर्याप्तत्वं ? न, द्रव्यार्थिकनयाश्रयणात्। ओदन: पच्यत इत्यत्र यथा तन्दुलानामेवौदनव्यपदेशस्तथाऽपर्याप्तावस्थायामप्यत्र पर्याप्तव्यवहारो न विरुध्द्यत इति। पर्याप्तनामकर्मोदयापेक्षया वा पर्याप्तता। एवं तिर्यक्ष्वपि वक्तव्यम्। सुगममन्यत्।

अवस्थामें भी पर्याप्त है, इस प्रकारका उपचार किया जाता है । निश्चयनयका आश्रय करने पर तो वह अपर्याप्त ही है । इसी प्रकार समुध्दातगत केवलीके संबन्धमे भी कथन करना चाहिये ।

अब मनुष्यके भेदोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते है ---

मनुष्य-सामान्यके कथनके समान मनुष्य पर्याप्त होते हैं ।। ९१ ।।

शंका -- पर्याप्तकोंमें अपर्याप्तपना तो बन नहीं सकता है, क्योंकि इन दोनों अवस्थाओंका परस्पर विरोध है । इसलिये ' इसीप्रकार पर्याप्त होते हैं ' यह कथन कैसे घटित होगा?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, शरीरकी अनिष्पत्तिकी अपेक्षा पर्याप्तकोंमें भी अपर्याप्तपना बन जाता है ।

शंका -- जिसके शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई है उसके पर्याप्तपना कैसे बनेगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा उसके भी पर्याप्तपना बन जाता है । भात पक रहा है, यहां पर जिस प्रकार चावलोंको भात कहा जाता है, उसी प्रकार जिसके सभी

पर्याप्तियां पूर्ण होनेवाली हैं ऐसे जीवके अपर्याप्त अवस्थामें भी पर्याप्तपनेका व्यवहार विरोधको प्राप्त नहीं होता है। अथवा पर्याप्त नामकर्मके उदयकी अपेक्षा उनके पर्याप्तपना समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार तिर्यंचोंमें भी कथन करना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

विशेषार्थ -- मनुष्य पर्याप्तकोंमें पर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त इन दोनों प्रकारके

मानुषीषु निरपणार्थमाह--

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ।। ९२।।

अत्रांपि पूर्ववदपर्याप्तानां पर्याप्तव्यवहार: प्रवर्तयितव्य:। अथवा स्यादित्ययं निपात: कथञ्चिदित्येतस्मिन्नर्थे [१] (मु. दित्यस्मिन्नर्थे।) वर्तते, तेन स्यात्पर्याप्ता: पर्याप्तनामकर्मोदयाच्छरीर-निष्पत्त्यपेक्षया वा । स्यादपर्याप्ता: शरीरानिष्पत्त्यपेक्षया इति वक्तव्यम् । सुगममन्यत् ।

तत्रेव शेषगुणविषयारेकापोहनार्थमाह --

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजद-ट्ठाणे २ (मु. संजदासंजद - ट्ठाणे) णियमा पज्जत्तियाओ ।। ९३ ।।

हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टय: किन्नोत्पद्यन्त इति चेत् ? नोत्पद्यन्ते ।

पुरुषवेदी मनुष्योंका अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, आगममें जो मनुष्योंके चार भेद किये हैं उनमेंसे जिनके पर्याप्त नामकर्मका उदय विद्यमान है ऐसे पुरुषवेदी मनुष्योंको मनुष्य पर्याप्त कहा है । इस पर शंकाकारका कहना है कि जिनके पर्याप्तियां पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे अपर्याप्तकोंका पर्याप्तकोंमें अन्तर्भाव कैसे किया जा सकता हैं । इसी शंकाको ध्यानमें रखकर यहाँ समाधान किया गया है ।

अब मनुष्यिनियोंमें गुणस्थानोंके निरुपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

मनुष्यिनियाँ मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि पर्याप्त भी होती हैं और अपर्याप्त भी होती हैं ।। ९२ ।।

यहां पर भी पर्याप्त मनुष्योंके समान निवृत्त्यपर्याप्तकोंमें पर्याप्तपनेका व्यवहार कर लेना चाहिये । अथवा, 'स्यात्' यह निपात कथंचित् अर्थमें रहता है । इसके अनुसार कथंचित् पर्याप्त

होते हैं, इसका यह तात्पर्य है कि पर्याप्त नामकर्मके उदयकी अपेक्षा अथवा शरीरपर्याप्तिकी पूर्णताकी अपेक्षा पर्याप्त होते हैं । और कथंचित् अपर्याप्त होते हैं, इसका यह तात्पर्य है कि शरीर पर्याप्तिकी अपूर्णताकी अपेक्षा अपर्याप्त होते हैं । शेष कथन सुगम है ।

अब मनुष्यिनियोंमें ही शेष गुणस्थानविषयक शंकाके दूर करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

मनुष्यिनियाँ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें नियमसे पर्याप्तक होती हैं ।। ९३ ।।

शंका -- हुण्डावसर्पिणी कालके दोषसे स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि जीव क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं?

समाधान -- उनमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं।

शंका -- यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

कुतोऽवसीयते? अस्मादेवार्षात्। अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृतिः१(मु. निर्वृत्तिः) सिध्द्येदिति चेन्न, सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः। भावसंयमस्तासां सवाससामप्यविरुध्द इति चेत्? न तासां भावासंयामोऽस्ति, भावसंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः। कथं पुनस्तासु चतुर्दश गुणस्थानानीति चेन्न, भावस्त्रीविशिष्टमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्। भाववेदो बादरकषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दशगुणस्थानानां सम्भव इति चेन्न, अत्र वेदस्य प्राधान्याभावात्। गतिस्तु प्रधाना, न साराद्विनश्यति। वेदविशेषणायां गतौ न तानि सम्भवन्तीति चेन्न, विनष्टेऽपि विशेषणे उपचारेण तव्द्यपदेशमादधानमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्। मनुष्यापर्याप्तेष्वपर्याप्तिप्रतिपक्षाभावतः सुगमत्वान्न तत्र वक्तव्यमस्ति।

समाधान -- इसी आर्षवचनसे जाना जाता है।

शंका -- तो इसी आर्षवचनसे द्रव्य-स्त्रियोंका मुक्ति जाना भी सिध्द हो जायगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वस्त्रसहित होनेसे उनके संयतासंयत गुणस्थान होता हैं, अतएव उनके संयमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

शंका -- वस्त्रसहित होते हुए भी उन द्रव्य-स्त्रियोंके भावसंयमके होनेमें कोई विरोध नहीं है?

समाधान -- उनके भाव संयम नहीं है, क्योंकि, अन्यथा, अर्थात् भाव संयमके मानने पर, उनके भाव असंयमका अविनाभावी वस्त्रादिकका ग्रहण करना नहीं बन सकता है।

शंका -- तो फिर स्त्रियोंमें चौदह गुणस्थान होते हैं यह कथन कैसे बन सकेगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, भावस्त्री अर्थात् स्त्रीवेद युक्त मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थानोंके सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका -- बादरकषाय गुणस्थानके ऊपर भाववेद नहीं पाया जाता है, इसलिये भाववेदमें चौदह गुणस्थानोंका सद्भाव नहीं हो सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यहां पर अर्थात् गतिमार्गणामें वेदकी प्रधानता नहीं है, किंतु गति प्रधान है और वह पहले नष्ट नहीं होती है।

शंका -- यद्यपि मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थान संभव हैं। फिर भी उसे वेद विशेषणसे युक्त कर देने पर उसमें चौदह गुणस्थान संभव नहीं हो सकते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, विशेषणके नष्ट हो जाने पर भी उपचारसे उस विशेषण युक्त संज्ञाको धारण करनेवाली मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थानोंका सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अपर्याप्तिका कोई प्रतिपक्षी नहीं होनेसे और उनका कथन सुगम होनेसे इस विषयमें कुछ अधिक कहने योग्य नहीं है। इसलिये इस संबन्धमें स्वतंत्ररुपसे नहीं कहा गया है।

देवगतौ निरुपणार्थमुत्तरसूत्रमाह --

देवा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सियां पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।। ९४ ।।

अथ स्याव्दिग्रहगतौ कार्मणशरीराणां न पर्याप्तिस्तदा पर्याप्तीनां षण्णां निष्पत्तेरभावात्। न अपर्याप्तास्ते, आरम्भात्प्रभृति आ उपरमादन्तरालावस्थायाम-पर्याप्तिव्यपदेशात्। न चानारम्भकस्य स व्यपदेश:, अतिप्रसडगात्। ततस्तृतीयमप्य-वस्थान्तरं वक्तव्यमिती? नैष दोष:, तेषामपर्याप्तेष्वन्तर्भावात्। नातिप्रसङ्गोऽपि, कार्मणशरीरस्थितप्राणिनामिवापर्याप्तकै सह सामर्थ्याभावोपपादैकान्तानुवृध्दियोगैर्ग-त्यायु:प्रथमव्दित्रिसमयवर्तनेने च शेषप्राणिनां प्रत्यासत्तेरभावात्। ततोऽशेषसंसारिणामवस्थाव्दयमेव नापरमिति स्थितम्।

अब देवगतिमें निरुपण करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं --

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ।।९४।।

शंका -- विग्रहगतिमें कार्मण शरीर होता है, यह बात ठीक है। किंतु वहां पर कार्मणशरीरवालोंके पर्याप्ति नहीं पाई जाती है, क्योंकि, विग्रहगतिके कालमें छह पर्याप्तियोंकी निष्पत्ति नहीं होती है? उसी प्रकार विग्रहगतिमें वे अपर्याप्त भी नहीं हो सकते हैं, क्योंकि, पर्याप्तियोंके आरम्भसे लेकर समाप्ति पर्यन्त मध्यकी अवस्थामें अपर्याप्ति यह संज्ञा दी गई है। परंतु जिन्होंने पर्याप्तियोंका आरम्भ ही नहीं किया है ऐसे विग्रहगतिसंबन्धी एक, दो और तीन समयवर्ती जीवोंको अपर्याप्त संज्ञा नहीं प्राप्त हो सकती है, क्योंकि, ऐसा मान लेने पर अतिप्रसंग दोष आता है। इसलिये यहाँ पर पर्याप्त और अपर्याप्तसे भिन्न तीसरी भी अवस्था कहना चाहिये?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंका अपर्याप्तोंमें ही अन्तर्भाव किया गया है। और ऐसा मान लेने पर अतिप्रसंग दोष भी नहीं आता है, क्योंकि, कार्मण-शरीरमें स्थित जीवोंकी अपर्याप्तकोंके साथ सामर्थ्याभाव, उपपादयोगस्थान, एकान्तानुवृध्दियोगस्थान और गति तथा आयुसंबन्धी प्रथम, व्दितीय और तृतीय समयमें होनेवाली अवस्थाके व्दारा जितनी समीपता पाई जाती है, उतनी शेष प्राणियोंकी नहीं पायी जाती है। इसलिये कार्मणकाययोगमें स्थित जीवोंका अपर्याप्तकोंमें ही अन्तर्भाव किया जाता है। अत: संपूर्ण प्राणियोंकी दो अवस्थाऐं ही होती हैं। इनसे भिन्न कोई तीसरी अवस्था नहीं होती है।

शेषगुणस्य सत्त्वावस्थाप्रतिपादनार्थमाह --

सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।।९५।।

कथं? तेन गुणेन सह तेषां मरणाभावात्। अपर्याप्तकालेऽपि सम्यग्मिथ्यात्व-गुणस्योत्पत्तेरभावाच्च। नियमेऽभ्युपगम्यमाने एकान्तवादः प्रसजतीति चेन्न, अनेकान्त-गर्भैकान्तस्य सत्त्वाविरोधात्।

देवादेशप्रतिपादनार्थमाह --

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय-देवा [१] (भवनेषु वसन्तीत्येवं शीला भवनवासिनः। विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तराः। द्योतनस्वभावत्वाज्ज्योतिष्काः। स.सि.त.रा.वा. ४.१०-१२. भवनेषु अधोलोकदेवावासविशेषेषु वस्तुं शीलमस्येति। अभि. रा. को. (भवणवासि) विविधं भवननगरावासरुपमन्तरं येषां ते व्यन्तराः। x x अथवा विगतमन्तरं मनुष्येभ्यो येषां ते व्यन्तराः। तथाहि, मनुष्यानपि चक्रवर्तिवासुदेवप्रभृतीन् भृत्यवदुपचरन्ति केचिव्द्यन्तरा इति मनुष्येभ्यो विगतान्तराः। यदि वा विविधमन्तरं शैलान्तरं कन्दरान्तरं वनान्तरं वा आश्रयरुपं येषां ते व्यन्तराः। प्राकृतत्वाच्च सूत्रे 'वाणमन्तरा' इति पाठः। यदि वानमन्तरा इति पदसंस्कारः, तत्रेयं व्युत्पत्तिः, वनानामन्तराणि वनान्तराणि, तेषु भवा वानमन्तराः। पृषोदरादित्वादुभयपदपदान्तरालवर्तिमकारागमः।) देवीओ सोधम्मीसाण-कप्पवासिय-देवीओ च मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता, सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ।।९६।।

इसी गतिमें शेष गुणस्थानोंकी सत्ताके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं-देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ।।९५ ।।

शंका -- यह कैसे?

समाधान -- क्योंकि, तीसरे गुणस्थानके साथ उनका मरण नहीं होता है। तथा अपर्याप्त कालमें भी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानकी उत्पत्ति नहीं होती है।

शंका -- 'तृतीय गुणस्थानमें पर्याप्त ही होते हैं' इस प्रकार नियमके स्वीकार कर लेने पर तो एकान्तवाद प्राप्त होता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अनेकान्तगर्भित एकान्तवादके सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अब देवगतिमें विशेष प्ररुपणाके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव और उनकी देवियां तथा सौधर्म ओर ऐशान कल्पवासिनी देवियां ये सब मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं अपर्याप्त भी होते हैं ।।९६।।

उभयगुणोपलक्षितजीवानां तत्रोत्पत्तेरुभयत्रापि तदस्तित्वं सिध्दम् । अन्यत्सुगमम् ।

तत्रानुत्पद्यमानगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह --

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता णियमा पज्जत्तियाओ ।। ९७ ।।

भवतु सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तत्रानुत्पत्तिः, तस्य तद्‌गुणेन मरणाभावात्, किंत्वेतन्न घटते यदसंयतसम्यग्दृष्टिर्मरणवांस्तत्र नोत्पद्यत इति ? न, जघन्येषु तस्योत्पत्तेरभावात् । नारकेषु तिर्यक्षु च कनिंष्ठेषूत्पद्यमानस्तत्र १ (मु. षूत्पद्यमानास्तत्र।) तेभ्योऽधिकेषु किमिति नोत्पद्यत २ (मु. नोत्पद्यन्त ।) इति चेन्न, मिथ्यादृष्टिनां प्राग्बध्दायुष्काणां पश्चादात्तसम्यग्दर्शनानां नारकाद्युत्पत्तिप्रतिबन्धनं प्रति सम्यग्दर्शनस्यासामर्थ्यात् । तव्दद्देवेष्वपि किन्न स्यादिति चेत्सत्यमिष्टत्वात् । तथा च

इन दोनों गुणस्थानोंसे युक्त जीवोंकी पूर्वोक्त देव और देवियोंमें उत्पत्ति होती है, अतएव उन दोनों गुणस्थानोंमें पर्याप्त और अपर्याप्तरुपसे उनका अस्तित्व सिध्द हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

उक्त देव और देवियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें नहीं होनेवाले गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं --

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पूर्वोक्त देव नियमसे पर्याप्त होते हैं और पूर्वोक्त देवियां नियमसे पर्याप्त होती हैं ।। ९७ ।।

शंका -- सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवकी उक्त देव और देवियोंमें उत्पत्ति मत होओ, यह ठीक है, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके साथ जीवका मरण नहीं होता है। परंतु यह बात नहीं बनती है कि मरनेवाला असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त देव ओर देवियोंमें उत्पन्न नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टिकी जघन्य देवोंमें उत्पत्ति नहीं होती है।

शंका -- जघन्य अवस्थाको प्राप्त नारकियोंमें और तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव उनसे उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त भवनवासी देव और देवियोंमें तथा कल्पवासिनी देवियोंमे क्यों नहीं उत्पन्न होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जो आयुकर्मका बन्ध करते समय मिथ्यादृष्टि थे और जिन्होंने तदनन्तर सम्यग्दर्शनको ग्रहण किया है ऐसे जीवोंकी नरकादि गतिमें उत्पत्तिके रोकनेकी सामर्थ्य सम्यग्दर्शनमें नहीं है।

प्रज्ञा. १ (पद. अभि. रा. को. वाणमंतर) द्योतन्ते इति ज्योतींषि विमानानि, तन्निवासिनो ज्योतिष्का:।

उत्त. २ अ. । ज्योतींषि विमानविशेषा:, तेषु भवा ज्योतिष्का:। स्था. ५ ठा. १ उ. (अभि. रा. को. - ज्योतिष्क, ज्यौतिष्क.)

भवनवास्यादिष्वप्यसयतसम्यग्दृष्टेरुत्पत्तिरास्कन्देदिति चेन्न, सम्यग्दर्शनस्य बध्दायुषा प्राणिनां तत्तद्गत्यायु:- सामान्येनाविरोधिनस्तत्तद्गतिविशेषोत्पत्तिविरोधिपलम्भात् तथा च भवनवासिव्यन्तर ज्योतिष्कप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषि- कपृथ्वीषट्कस्त्रीनपुंसक-विकलैकेन्द्रिय१ (मु. विकलेन्द्रिय-) लब्ध्यपर्याप्तककर्मभूमिजतिर्यक्षु चोत्पत्त्या विरोधोऽसंयतसम्यग्दृष्टे: सिध्द्येदिति तत्र ते नोत्पद्यन्ते। सुगममन्यत्।

शेषदेवेषु गुणावस्थाप्रतिपादनार्थं वक्ष्यति --

सोधम्मीसाण-प्पहुडि जाव उवरिम -उवरिम..गेवज्जं [२] (लोकपुरुषस्य ग्रीवास्थानीयत्वात् ग्रीवा: । ग्रीवासु भवानि ग्रैवेयकाणि विमानानि । तत्साहचर्यात् इन्द्रा अपि ग्रैवेयका: । त. रा. वा. ४. १९. ग्रीवेव ग्रीवा लोकपुरुषस्य त्रयोदशरज्जुपरिवर्त्तिप्रदेश: तन्निविष्ट-तयातिभ्राजिष्णुतया च तदाभरणभूतादौ ग्रैवेयका देशवासा:, तन्निवासिनो देवा अपि ग्रैवयका:। उत्त. ३६. अ. (अभि. रा. को. गेविज्जक.)) ति विमाणवासिय ३ (विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि, विमानेषु भवा वैमानिका:। स. सि., त. रा. वा. ४. १६. विविधं मन्यन्ते उपभुज्यन्ते पुण्यवभ्दिर्जीवैरिति विमानानि। तेषु भवा: वैमानिका:। से किं तं वेमाणिया ? वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा कप्पोपगा य कप्पाईया य। x x कल्प आचार:, स चेह)-देवेसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्मा-इट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।। ९८।।

शंका -- सम्यग्दृष्टि जीवोंकी जिस प्रकार नरकगति आदिमें उत्पत्ति होती है उसी प्रकार देवोंमें क्यों नहीं होती है?

समाधान -- यह कहना ठीक है, क्योंकि, यह बात इष्ट ही है।

शंका -- यदि ऐसा है तो भवनवासी आदिमें भी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवकी उत्पत्ति प्राप्त हो जायगी?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिन्होंने पहले आयुकर्मका बन्ध कर लिया है ऐसे जीवोंके सम्यग्दर्शनका उस उस गतिसंबन्धी आयुसामान्यके साथ विरोध न होते हुए भी उस उस गतिसंबन्धी विशेषमें उत्पत्तिके साथ विरोध पाया जाता है। ऐसी अवस्थामें भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, प्रकीर्णक, आभियोग्य, और किल्विषिक देवोंमें, नीचेके छह नरकोंमें, सब प्रकारकी स्त्रियोंमें, प्रथम नरकके बिना सब प्रकारके नपुंसकोंमें, विकलत्रयोंमें, एकेन्द्रियोंमें लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें और कर्मभूमिज तिर्यंचोंमे असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्पत्तिके साथ विरोध सिध्द हो जाता है। इसलिये इतने स्थानोंमें सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। शेष कथन सुगम है ।

शेष देवोंमें गुणस्थानोंकी अवस्थितिके बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकके उपरिम भाग पर्यन्त विमानवासी देवोंसंबन्धी मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जीव पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ।।९८।।

भवत्वत्रोभयावस्थासु गुणत्रयस्यास्तित्वम्१ (मु. गुणत्रयास्तित्वं।), तस्य तेषूत्पत्तिं प्रति विरोधासिध्दे:। सनत्कुमारादुपरि न स्त्रिय: समुत्पद्यन्ते, सौधर्मादाविव तदुत्पत्त्यप्रतिपादनात्। तत्र स्त्रीणामभावे कथं तेषां देवानामनुपशान्तान्तस्तापानां २ (मु. शान्ततत्सन्तापानां।) सुखमिति चेन्न, तत्स्त्रीणां सौधर्मकल्पोपपत्ते:। तर्हि तत्रापि स्त्रीणामस्तित्वभिधातव्यमिति चेन्न, अन्यत्रोत्पन्ना-नामन्यलेश्यायुर्बलानां स्त्रीणां तत्र सत्त्वविरोधात्। तत्र भवनवासिनो व्यन्तरज्योतिष्का: सौधर्मैशानदेवाश्च मनुष्या इव कायप्रवीचारा:। प्रवीचारो मैथुनसेवनम्, काये प्रवीचारो येषां ते कायप्रवीचारा:। सनत्कुमारमाहेन्द्रयो: स्पर्शप्रवीचारा:, तत्रतनदेवा देवाङ्गनास्पर्शनमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते इति यावत् । तथा देव्योऽपि। यतो ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टेषु देवा: दिव्याङ्गनाश्रृङ्गाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेष-

----

शंका -- सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकके उपरिम भाग तकके देवोंकी पर्याप्त और अपर्याप्त इन दोनों अवस्थाओंमें प्रथम, व्दितीय और चतुर्थ गुणस्थानोंका अस्तित्व पाया जाता है, यह कहना ठीक है, क्योंकि, उन तीन गुणस्थानोंकी उक्त देवोंमें उत्पत्तिके प्रति विरोध नहीं है। किन्तु सनत्कुमार स्वर्गसे लेकर ऊपर स्त्रिया उत्पन्न नहीं होती हैं, क्योंकि, सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें देवांगनाओंके उत्पन्न होनेका जिस प्रकार कथन किया गया है, उस प्रकार आगेके स्वर्गोमें उनकी उत्पत्तिका कथन नहीं किया गया है। इसलिये वहां स्त्रियोंके अभाव रहने पर, जिनका स्त्रीसंबन्धी अन्तस्ताप शान्त नहीं हुआ है ऐसे देवोंके उनके विना सुख कैसे हो सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सनत्कुमार आदि कल्प-संबन्धी स्त्रियोंकी सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें उत्पत्ति होती है।

शंका -- तो सनत्कुमार आदि कल्पोंमें भी स्त्रियोंकेअस्तित्वका कथन करना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जो दूसरी जगह उत्पन्न हुई हैं, तथा जिनकी लेश्या, आयु और बल सनत्कुमारादि कल्पोंमें हुए देवोंसे भिन्न प्रकारके हैं ऐसी स्त्रियोंका सनत्कुमारादि कल्पोंमें उत्पत्तिकी अपेक्षा अस्तित्व होनेमें विरोध आता है।

उन देवोंमे भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा सौधर्म और ऐशान कल्पवासी देव मनुष्योंके समान शरीरसे प्रवीचार करते हैं। मैंथुनसेवनको प्रवीचार कहते हैं। जिनका कायमें प्रवीचार होता है उन्हें कायसे प्रवीचार करनेवाले कहते हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पमें देव स्पर्शसे प्रवीचार करते हैं। अर्थात् इन दोनों कल्पोंमें रहनेवाले देव देवांगनाओंके स्पर्शमात्रसे ही अत्यन्त प्रीतिको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार वहांकी देवियां भी देवोंके स्पर्शमात्रसे अत्यन्त प्रीतिको प्राप्त होती हैं। जिस कारण ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ट कल्पोंमे रहनेवाले देव अपनी देवांगनाओंके श्रृंगार, आकार, विलास, प्रशस्त तथा मनोज्ञ वेष तथा रुपके अवलोकन

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशादिव्यवहाररुपस्तमुपगा: प्राप्ता: कल्पोपगा: सौधर्मैशानादिदेवलोकनिवासिन:। यथोक्तरुपं कल्पमतीता: अतिक्रान्ता: कल्पातीता:। प्रज्ञा १ पद. (अभि. रा. को. वेमाणिय.)

रुपालोकमात्रादेव परं सुखमवाप्नुवन्ति ततस्ते रुपप्रवीचारा:। यत: शुक्रमहाशुक्रशतार-सहस्त्रारेषु देवा: देवाङ्गनानां मधुरसङ्गीतमृदुहसितललितकथितभूषणरवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति ततस्ते शब्दप्रवीचारा:। आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवा: यत: स्वाङ्गनामन: सङ्कल्पमात्रादेव परं सुखमवाप्नुवन्ति [१] (स. सि. ४. ८., त. रा. वा. ४.८., वा. ५.) ततस्ते मन:प्रवीचारा:। प्रवीचारो वेदनाप्रतीकार:। वेदनाभावाच्छेषा: देवा: अप्रवीचारा: अनवरतसुखा इति यावत्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्वरुपनिरुपणार्थमाह --

सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।।९९।।

सुगमत्वान्नात्र वक्यव्यमस्ति।

शेषदेवेषु गुणस्थानस्वरुपनिरुपणार्थमाह --

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजितसव्वट्ठ..सिध्दिविमाणवासिय-देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।।१००।।

मात्रसे ही परम सुखको प्राप्त होते हैं इसलिये वे रुपसे प्रवीचार करनेवाले हैं। जिस कारण शुक्र महाशुक्र शतार और सहस्त्रार कल्पोंमें रहनेवाले देव देवांगनाओंके मधुर संगीत, कोमल हास्य, ललित शब्दोच्चार और भूषणोंके शब्द सुनने मात्रसे ही परम प्रीतिको प्राप्त होते हैं, इसलिये वे शब्दसे प्रवीचार करनेवाले हैं। जिस कारण आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोंमें रहनेवाले देव अपनी स्त्रीका मनमें संकल्प करने मात्रसे ही परम सुखको प्राप्त होते हैं, इसलिये वे मनसे प्रवीचार करनेवाले हैं। वेदनाके प्रतीकारको प्रवीचार कहते हैं। उस वेदनाका अभाव होनेसे नव ग्रैवेयकसे लेकर ऊपरकेसभी देव प्रवीचाररहित हैं अर्थात् निरन्तर सुखी हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंकेस्वरुपकेनिर्णय करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं --

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें देव नियमसे पर्याप्तक होते हैं ।।९९।।

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां पर अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

अब शेष देवोंमें गुणस्थानोंकेस्वरुपकेनिर्णय करनेकेलिये सूत्र कहते हैं--

नव अनुदिशोंमे और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिध्दि इन पांच अनुत्तर विमानोंमे रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ।। १०० ।।

पञ्चानामेव नामान्यभ्यधादन्तदीपकार्थम्। ततः शेषस्वर्गनामान्यपि वक्तव्यानि। तानि च यथावसरं वक्ष्यामः। एवं योगनिरुपणावसर एव चतसृषु गतिषु पर्याप्तापर्याप्तकालविशिष्टासु सकलगुणस्थानानामभिहितमस्तित्वम्। शेषमार्गणासु अयमर्थः किमिति नाभिधीयत इति चेत्? नोच्यते, अनेनैव गतार्थत्वाद् गतिचतुष्टय-व्यतिरिक्तमार्गणाभावात्।

वेदविशिष्टगुणस्थाननिरुपणार्थमाह --

वेदाणुवादेण अत्थि इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा चेदि ।। १०१।।

दोषैरात्मानं परं च स्तृणति छादयतीति स्त्री, स्त्री चासौ वेदश्च स्त्रीवेदः, स एषामस्तीति स्त्रीवेदाः। अथवा १ (मु. वेदश्च स्त्रीवेदः। अथवा।) पुरुषं स्तृणाति आकाङःक्षतीति स्त्री पुरुषकाङःक्षेत्यर्थः। स्त्रियं विन्दतीति स्त्रीवेदः। अथवा वेदनं वेदः, स्त्रियो वेदः स्त्रीवेदः। उक्तं च

ये पांच विमान सबसे अन्तमें हैं इस बातके प्रगट करनेके लिये पांचों ही विमानोंके नाम कहे गये हैं, इसलिये शेष स्वर्गोंके नाम भी कहने चाहिये। परंतु उनका वर्णन यथावसर करेंगे।

इस प्रकार योगमार्गणाके निरुपण करनेके अवसर पर ही पर्याप्त और अपर्याप्त काल युक्त चारों गतियोंमें संपूर्ण गुणस्थानोंकी सत्ता बतला दी गई।

शंका -- शेष मार्गणाओंमें यह विषय क्यों नहीं कहा जाता है?

समाधान -- नहीं कहते हैं, क्योंकि, इसी कथनसे शेष मार्गणाओंमें इस विषयका ज्ञान हो जाता है, क्योंकि, चारों गतियोंको छोडकर अन्य मार्गणाऐं नहीं पाई जातीं।

अब वेदसहित गुणस्थानोंके निरुपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं-- वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद और अपगतवेदवाले जीव होते हैं ।। १०१ ।।

जो दोषोंसे स्वयं अपनेको और दूसरेको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं और स्त्रीरुप जो वेद है उसे स्त्रीवेद कहते हैं। वह स्त्रीवेद जिनके पाया जाता है वे स्त्रीवेदी कहलाते हैं। अथवा, जो पुरुषकी आकांक्षा करती है उसे स्त्री कहते हैं, जिसका अर्थ पुरुषकी चाह

करनेवाली होता है। जो अपनेको स्त्रीरुप अनुभव करता है उसे स्त्रीवेद कहते हैं। अथवा वेदन करनेको वेद कहते हैं और स्त्रीकेवेदको स्त्रीवेद कहते हैं। कहा भी है --

----

उपपातो जन्मानुत्तरोपपात:। भ. ६. श. ६ उ. अत्थि णं भंते अणुत्तरोववाइया देवा। हंता। अत्थि। से केण्टठेणं भंते? एवं वुच्चइ अणुत्तरोववाइया देवा? गोयमा। अणुत्तरोववाइयाणं अणुत्तरा सद्दा, अणुत्तरा रुवा, जाव अणुत्तरा फासा, से तेणट्ठेणं गोयमा। एवं वुच्चइ जाव अणुत्तरोववाइया देवा। भ. १४ श. ७. उ. (अभि. रा. को. अणुत्तरोववाइय.)

छादेदि सयं दोसेण यदो छादइ परं हि दोसेण।

छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी [१] (प्रा. पं. १, १०५ । गो. सी. २७४. नयत: मृदुभाषितस्निग्धविलोकनानुकुलवर्तनादिकुशल-व्यापारै: । जी. प्र. टी.) ।। १७०।।

पुरुगुणेषु पुरुभोगेषु च शेते स्वपितीति पुरुष:। सुषुप्तपुरुषवदनवगत[२] -(मु. वदनुगत।) गुणोऽप्राप्तभोगश्च यदुदयाज्जीवो भवति स पुरुष: अङ्गनाभिलाष इति यावत् । पुरुमुणं कर्म शेते करोतीति वा पुरुष:। कथं स्त्र्यभिलाष: पुरुगुणं कर्म कुर्यादिति चेन्न, तथाभूतसामर्थ्यानुविध्दजीवसहचरितत्वादुपचारेण जीवस्य तस्य तत्कर्तृत्वा[३]-(मु. जीवस्य तत्कर्तृत्वा) भिधानात् । तस्य वेद: पुंवेद: । उक्तं च--

पुरु-गुण-भोगे सेदे करेदि लोगम्हि पुरुगुणं कम्मं ।

पुरु उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिदो पुरिसो [४] (प्रा. पं. १, १०६। गो. जी. २७३. पुरुगुणे सम्यग्ज्ञानाधिकगुणसमूहे। पुरुभोगे नरेन्द्रनागेन्द्र देवेन्द्राद्यधिकभोगचये। पुरुगुणं कर्म धमार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनरुप- दिव्यानुष्ठानं । पुरुत्तमे परमेष्ठिपदे । जी. प्र. टी.) ||१७१||

न स्त्री न पुमान्नपुंसक:,[५] (मु. पुंसकमुभं ।) उभयाभिलाष इति यावत् । उक्तं च--

----

जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान और असंयम आदि दोषोंसे अपनेको आच्छादित करती है और मधुर संभाषण, कटाक्ष-विक्षेप आदिके व्दारा जो दूसरे पुरुषोंकी भी अब्रह्म आदि दोषोंसे आच्छादित करती है, उसको आच्छादनशील होनेकेकारण स्त्री कहा है ।।१७०।।

जो उत्कृष्ट गुणोंमें और उत्कृष्ट भोगोंमें शयन करता है उसे पुरुष कहते हैं। अथवा, जिस कर्मके उदयसे जीव, सोतें हुए पुरुषके समान गुणोंको नहीं जानता है और भोगोंको प्राप्त नहीं करता है उसे पुरुष कहते हैं। अर्थात् स्त्रीसंबन्धी अभिलाषा जिसके पाई जाती है उसे पुरुष कहते हैं। अथवा, जो श्रेष्ठ गुणयुक्त कर्म करता है वह पुरुष है।

शंका -- जिसके स्त्रीविषयक अभिलाषा पाई जाती है वह उत्तम गुणयुक्त कर्म कैसे कर सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उत्तम गुणयुक्त कर्मको करनेरुप सामर्थ्यसे युक्त जीवके सहचरितपनेकी अपेक्षा वह उत्तम कर्मको करता है ऐसा कथन उपचारसे किया है । कहा भी है --

जो उत्तम गुण और उत्तम भोगोंमें सोता है अथवा जो लोकमें उत्तम गुणयुक्त कार्य करता है और जो उत्तम है उसे पुरुष कहा है ।। १७१ ।।

जो न स्त्री है और न पुरुष है उसे नपुंसक कहते हैं, अर्थात् जिसके स्त्री और पुरुषविषयक दोनों प्रकारकी अभिलाषा पाई जाती है उसे नपुंसक कहते हैं । कहा भी है --

----

णेवित्थी णेव पुमं णवुंसओ उभय-लिंग-वदिरित्तो।

इट्टावाग [1] (मु. इट्ठावाग।)-समाणग-वेयण-गरुओ-कलुस चित्तो [2] (प्रा. पं. १, १०७। गो. जी. २७५. तथापि स्त्रीपुरुषाभिलाषरुपतीव्रकामवेदनालक्षणो भावनं-पुसकवेदोऽस्तीति आचार्यस्य तात्पर्यं ज्ञातव्यं । जी. प्र. टी.।) ।। १७२ ।।

अपगतास्त्रयोऽपि वेदसंतापा येषां तेऽपगतवेदाः। प्रक्षीणान्तर्दाहा इति यावत्। सर्वत्र सन्तीत्यभिसम्बन्धः कर्तव्यः । उक्तं च--

कारिस-तणिट्टावागग्गि [3] (मु. तणिट्ठवागग्गि।) -सरिस-परिणाम-वेयणुम्मुक्का।

अवगय-वेदा-जीवा-सग-संभवणंत-वर-सोक्खा [4] (प्रा. पं. १, १०८। गो. जो. २७६. यद्यपि अपगतवेदानिवृत्तिकरणादीनां वेदोदयजनितकाम-वेदनारुपसंक्लेशाभावः तथापि गुणस्थान तीतमुक्तात्मनां स्वात्मोत्थसुख-सद्भावः ज्ञानादिगुणसद्भाववद्दर्शितः। परमार्थवृत्त्या तु अपगतवेदानामेषामपि ज्ञानोपयोगस्वास्थ्यलक्षणपरमानंदो जीवस्वभावोऽस्तीति निश्चेतव्यः। जी. प्र. टी.) ।। १७३ ।।

वेदवतां जीवानां गुणस्थानादिषु सत्त्वप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह --

इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णिमिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ।। १०२ ।।

उभयोर्वेदयोरक्रमणैकस्मिन् प्राणिनि सत्त्वं प्रात्नोतीति चेन्न, विरुध्दयोरक्रमणै --

----

जो न स्त्री है और न पुरुष है, किंन्तु स्त्री और पुरुषसंबन्धी दोनों प्रकारके लिंगोंसे रहित है, अवाकी अग्निके समान तीव्र वेदनासे युक्त है और सर्वदा स्त्री और पुरुष विषयक मैथुनकी अभिलाषासे उत्पन्न हुई वेदनासे जिसका चित्त कलुषित है उसे नपुंसक कहते हैं ।। १७२ ।।

जिनके तीनों प्रकारके वेदोंसे उत्पन्न होनेवाला संताप (अन्तरंग दाह) दूर हो गया है वे अपगतवेद जीव हैं।

सूत्रमें कहे गये सभी पदोंकेसाथ 'सन्ति' पदका संबन्ध कर लेना चाहिये। कहा भी है --

जो कारीष (कण्डेकी) अग्नि, तृणाग्नि और इष्टापाकाग्नि (अवेकी अग्नि) के समान परिणामोसें उत्पन्न हुई वेदनासे रहित हैं और अपनी आत्मासे उत्पन्न हुए अनन्त और उत्कृष्ट सुखकेभोक्ता हैं वेदरहित जीव कहते हैं।। १७३ ।।

अब वेदोंसे युक्त जीवोंके गुणस्थान आदिकमें अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

स्त्रीवेद और पुरुषवेदवाले जीव असंज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं ।। १०२।।

शंका -- इस प्रकार तो दोनों वेदोंका एकसाथ एक जीवमें अस्तित्व प्राप्त हो जायगा?

कस्मिन् सत्त्वविरोधात्। कथं पुनस्तयोस्तत्र सत्त्वमिति चेभ्दिन्नजीवद्रव्याधारतया पर्यायेणैकद्रव्याधारतया च। तत्र न [1] (ब. न तत्र) नपुंसकवेदस्याभाव:, तत्र व्दावेद वेदौ भवत इत्यवधारणाभावात्। तत्कुतोऽवसीयत इति चेत्? 'तिरिक्खा ति-वेदा असण्णिपंचिं-दियप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति। मणुस्सा ति-वेदा मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति' एतस्मादार्षात्। सुगममन्यत्।)

नपुंसकवेदसत्त्वप्रतिपादनार्थमाह --

णवुंसयवेदा एइंदिय-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति २(वेदानुवादेन त्रिषु वेदेपु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानि सन्ति। स. सि. १. ८. थावरकायप्पहुदी संढो सेसाअसण्णिआदी य। अणियट्टिस्स य पढमो भागो त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ।। गो. जी. ३८५.) ।। १३० ।।

एकेन्द्रियाणां न द्रव्यवेद उपलभ्यते, तदनुपलब्धौ कथं तस्य तत्र सत्त्वमिति

समाधान -- नहीं, क्योंकि, विरुध्द दो धर्मोंका एकसाथ एक जीवमें सद्‍भाव होनेंमें विरोध आता है ।

शंका -- तो फिर नववें गुणस्थानतक इन दोनों वेदोंकी एकसाथ सत्ता कैसे बनेगी?

समाधान -- भिन्न भिन्न जीवोंके आधारपनेकी अपेक्षा और पर्यायरुपसे एक जीवद्रव्यके आधारपनेकी अपेक्षा नववें गुणस्थानतक इन दोनों वेदोंकी सत्ता बन जाती है। अर्थात् एक कालमें भी नाना जीवोंमें अनेक वेद पाये जा सकते हैं और एक जीवमें भी पर्यायकी अपेक्षा कालभेदसे अनेक वेद पाये जा सकते हैं।

नववें गुणस्थानतक नपुंसक वेदका अभाव नहीं है, क्योंकि, नववें गुणस्थानतक दो ही वेद होते हैं ऐसे अवधारणका (सूत्रमें) अभाव है।

शंका -- यह बात किस प्रमाणसे जानी जाय कि नववें गुणस्थानतक तीनों वेद होते हैं?

समाधान -- 'असंज्ञी पंचेन्द्रियसे लेकर संयतासंयत गुणस्थानतक तिर्यंच तीनों वेदवाले होते हैं' और ' मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक मनुष्य तीनों वेदोंसे युक्त होते हैं' इस आगम-वचनसे यह बात जानी जाती है कि नववें गुणस्थानतक तीनों वेद हैं। शेष कथन सुगम है।

अब नपुंसकवेदकेसत्त्वकेप्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

एकेन्द्रियसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक नपुंसकवेदवाले जीव पाये जाते हैं ।। १०३ ।।

शंका -- एकेन्द्रिय जीवों के द्रव्यवेद नहीं पाया जाता है, इसलिये द्रव्यवेदकी उपलब्धि नहीं होने पर एकेन्द्रिय जीवोंमें नपुंसक वेदका अस्तित्व कैसे बतलाया?

चेन्माभूत्तत्र द्रव्यवेदः, तस्यात्र प्राधान्याभावात्। अथवा नानुपलब्ध्या तदभावः सिध्द्येत्, सकलप्रमेयव्याप्युपलम्भबलेन तत्सिध्दिः। न स छद्मस्थेष्वस्ति। एकेन्द्रिया-णामप्रतिपन्नस्त्रीपुरुषाणां कथं स्त्रीपुरुषविषयाभिलाषा[१] (मू. विषयाभिलाषे व विषयोऽभिलाषो.) घटत इति चेन्न, अप्रतिपन्नस्त्रीवेदेन भूमिगृहान्तर्वृध्दिमुपगतेन यूना पुरुषेण व्यभिचारात् । सुगमममन्यत् ।

अपगतवेदजीवप्रतिपादनार्थमाह --

तेण परमवगदवेदा चेदि २ (अपगतवेदुपु अनिवृत्तिवादराद्ययोगकेवल्यन्तानि । स. सि. १. ८.) ॥ १०४ ॥

समाधान -- एकेन्द्रियोंमें द्रव्यवेद मत होओ, क्योंकि, उसकी यहां पर प्रधानता नहीं है। अथवा, द्रव्यवेदकी एकेन्द्रियोंमे उपलब्धि नहीं होती है, इसलिये उसका अभाव नहीं सिध्द होता है। किंतु संपूर्ण प्रमेयोंमें व्याप्त होकर रहनेवाले उपलम्भप्रमाणसे (केवलज्ञानसे) उसकी सिध्दि हो जाती है। परंतु वह उपलम्भ (केवलज्ञान) छद्मस्थोंमें नहीं पाया जाता है।

विशेषार्थ -- इन्द्रियप्रत्यक्षसे एकेन्द्रियोंमे वेदकी अनुपलब्धि सच्ची अनुपलब्धि नहीं है, क्योंकि, एकेन्द्रियोंमें यद्यपि इन्द्रियोंसे द्रव्यवेदका ग्रहण नहीं होता है तो भी सकल प्रमेयोंमें व्याप्त होकर रहनेवाले केवलज्ञानसे उसका ग्रहण होता है। अतः एकेन्द्रियोंमें इन्द्रिय प्रमाणके व्दारा द्रव्यवेदका अभाव नहीं किया जा सकता है।

शंका -- जो स्त्रीभाव और पुरुषभावसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं ऐसे एकेन्द्रियोंके स्त्री और पुरुषविषयक अभिलाषा कैसे बन सकती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जो पुरुष स्त्रीवेदसे सर्वथा अज्ञात है और भूगृहके भीतर वृध्दिको प्राप्त हुआ है, ऐसे पुरुषके साथ उक्त कथनका व्यभिचार देखा जाता है।

विशेषार्थ -- यदि यह मान लिया जाय कि एकेन्द्रिय जीव स्त्री और पुरुषसंबन्धी भेदसे सर्वथा अपरिचित होते हैं, इसलिये उनके स्त्री और पुरुषसंबन्धी अभिलाषा नहीं उत्पन्न हो सकती है, तो जो पुरुष जन्मसे ही एकान्तमें वृध्दिको प्राप्त हुआ है ओर जिसने स्त्रीको कभी भी नहीं देखा है उसके भी युवा होने पर स्त्रीविषयक अभिलाषा नहीं उत्पन्न होना चाहिये। परंतु उसके स्त्रीविषयक अभिलाषा देखी जाती है। इससे सिध्द है कि स्त्री और पुरुषसंबन्धी अभिलाषाका कारण स्त्री और पुरुषविषयक ज्ञान नहीं है। किंतु वेदकर्मके उदयसे वह अभिलाषा उत्पन्न होती

है। वह एकेन्द्रियोंकें भी पाया जाता है, अतएव उनके स्त्री और पुरुषविषयक अभिलाषाके होनेमें कोई दोष नहीं आता है। शेष व्याख्यान सुगम है।

अब वेदरहित जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

नववें गुणस्थानके सवेद भागकेआगे जीव अपगतवेद होते हैं ।। १०४ ।।

शेषगुणमधिष्ठता: सर्वेऽपि प्राणिनोऽपगतवेदा:। न द्रव्यवेदस्याभाव:, तेनाधिकाराभावात् [१] (मु. स्तेन विकारा ।) अधिकृतोऽत्र भाववेद:, ततस्तदभावादपगतवेदो नान्यथेति।

वेदादेशप्रतिपादनार्थमाह --

णेरइया चदुसु ट्ठाणेसु सुध्दा णवुंसयवेदा ।। १०५।।

नारकेषु शेषवेदाभाव: कुतोऽवसीयत [२] (मु. कथमवसीयत ।) इति चेत् ' सुध्दा णवुंसयवंदा ' इत्यार्षात् । शेषवेदौ तत्र किमिति न स्यातामिति चेन्न, अनवरतदु:खेषु तत्सत्त्वविरोधात् । स्त्रीपुरुषवेदावपि [३] (मु. वेदादपि ।) दुख:मेवेति चेन्न, इष्टकापाकाग्निसमानसंन्तापात् न्यूनतया[४] (मु. सन्तापान्यूनतया।) तार्णकारीषाग्निसमानपुरुषस्त्रीवेदयो: सुखरुपत्वात् ।

तिर्यग्गतौ वेदनिरुपणार्थमाह --

तिरिक्खा सुध्दा णवुंसगवेदा एइंदिय - प्पहुडि जाव चउरिंदिया त्ति ।। १०६।।

नववें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे शेष गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीव अपगतवेद होते हैं । परंतु आगेके गुणस्थानोंमे द्रव्यवेदका अभाव नहीं होता है, क्योंकि, द्रव्यवेदका यहाँ अधिकार नहीं है । यहां पर तो भाववेदका अधिकार है । इसलिये भाववेदके अभावसे ही उन जीवोंको अपगतवेद जानना चाहिये, द्रव्यवेदकेअभावसे नहीं ।

अब वेदका मार्गणाओंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

नारकी जीव चारों ही गुणस्थानोंमें शुध्द (केवल) नपुंसकवेदी होते हैं ।। १०५ ।।

शंका -- नारकियोंमें नपुंसकवेदको छोडकर दूसरे वेदोंका अभाव है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान -- 'नारकी शुध्द नपुंसकवेदी होते हैं, इस आर्षवचनसे जाना जाता है कि वहां अन्य दो वेद नहीं होते हैं।'

शंका -- वहां पर शेष दो वेद क्यों नहीं होते है?

समाधान -- इसलिये नहीं होते की निरन्तर दु:खी उनमें शेष दो वेदोंके सद्‌भाव होनेमें विरोध आता है।

शंका -- स्त्री और पुरुषवेद दुख ही हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अवाकी अग्निके समान संतापसे न्यून होनेके कारण तृण और कण्डेकी अग्निके समान पुरुषवेद और स्त्रीवेद सुखरुप हैं।

अब तिर्यंचगतिमें वेदोंके निरुपण करनेकेलिये सूत्र कहते हैं।

तिर्यंच एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर चतुरिन्द्रियतक शुध्द नपुंसकवेदी होते हैं ।। १०६ ।।